129 न्यायिक सक्रियता, कितनी समस्या? कितना समाधान?

लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका एक दूसरे के पूरक भी होते हैं और नियंत्रक भी। यदि तीनों में से कोई अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाता है तो अन्य दो उसकी सहायता करके उसे गतिशील बनाते हैं किन्तु यदि तीनों में से कोई एक ठीक से काम नहीं करती है या मनमानी करने लगती है ता अन्य दो उसकी गतिविधियों को नियंत्रित करके उस पर अंकुश लगाते हैं। यह कार्य विभाजन ऐसा है कि किसी भी इकाई को उच्श्रृंखल होने से रोक कर रखता है।

स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही विधायिका ने सर्वोच्च बनने का प्रयास शुरू कर दिया जिसमें सर्वप्रथम संविधान में न्यायपालिका के पंख कतरने के लिये नौवीं अनुसूची का एक नया प्रावधान बना। इस अनुसूची के अनुसार संसद अपने बनाये कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बाहर रखने की इच्छा पूर्ति के लिये ऐसे कानूनों को इस सूची में डाल सकती है। इसके बाद विधायिका ने कार्यपालिका के भी पंख कतरने के उद्देश्य से कुछ ऐसे संशोधन किये कि राष्ट्रपति मात्र रबर स्टैम्प का रूप बन जावे। विधायिका ने सारी शक्ति अपने पास इकट्ठी कर ली और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका उसे रोकने में बिल्कुल असमर्थ हो गये। सन् 1975 में भारतीय जनता ने हस्तक्षेप करके न्यायपालिका और कार्यपालिका को फिर से जीवित किया जिसके बाद विधायिका की उच्श्रृंखलता पर कुछ अंकुश लग सका।

ऐसे समय का लाभ उठाकर न्यायपालिका ने भी अपनी सर्वोच्चता प्रमाणित करना प्रारंभ कर दिया और जनहित याचिका के नाम पर एक नया अध्याय खोल दिया। आदर्श स्थिति में किसी भी इकाई को न न्यायलय न्याय दे सकता है न विधायिका। विधायिका न्याय की प्रक्रिया निश्चित करती है जिसे Law according to justice कहते है। ऐसे न्याय पालिका उस प्रक्रिया के अनुसार न्याय कर सकती है जिसे justice according to Law कहत हैं। किन्तु भारत में विधायिका ने स्वयं को सर्वोच्च मानने की भूल में नौवी अनुसूची बनाकर समाज को सीधे न्याय प्रदान करने की गलत परंपरा डाल दी तो न्यायपालिका ने भी जनहित याचिका ने नाम पर समाज को सीधा न्याय देना शुरू कर दिया। दोनों ही भूल गये कि उन्हें अकेले न्याय देने का कोई अधिकार नहीं है।

जब भी ऐसे प्रयत्न शरू होते हैं तो सामान्य नागरिकों में ऐसे कदम की खूब प्रशंसा मिलती है। जब भूमि सुधार कानून इस सूची में डाले गये तब भी विधायिका को ऐसी ही प्रशंसा मिली थी और जब जनहित याचिकाएँ शुरू हुई तब भी न्यायपालिका को वैसी ही प्रशंसा मिली। उच्श्रृंखल विधायिका पर न्यायिक सक्रियता को भारत के आम नागरिकों ने सर माथे पर उठा लिया। न्यायपालिका ने भी इस तरीके का भरपूर उपयोग किया। न्यायपालिका यह भूल गई कि ऐसे जन प्रंशसा ने विधायिका के उच्श्रृंखल होने का मार्ग प्रशस्त किया था और ऐसी प्रशंसा कहीं उसे भी उसी दिशा में न ले जावे। किन्तु न्यायपालिका लगातार सक्रिय होती चली गई जो प्रवाह अब तक थमा नहीं है। न्यायपालिका ने अपनी सक्रियता के मद्देनजर कई बार कानून का सहारा लेकर कार्यपालिका की बहुत खिचाई करनी शुरू कर दी तो कई न्याय का सहारा लेकर विधायिका पर भी उसका अंकुश लगता गया। जब न्याय और कानून आपस में टकरातें हों तब ऐसी टकराहट को विधायिका ही दूर कर सकती है, न्यायपालिका नहीं किन्तु न्यायपालिका ने अपनी सुविधा अनुसार दोनों का उपयोग किया। जाहिरा शेख और जेसिका लाल हत्याकांड मामलों में न्यायालय ने

स्थापित परंपरा से हटकर न्याय दिया। यदि न्यायालय परंपराओं से लिपटा रहता तो वास्तविक अपराधियों को दण्ड देना कठिन हो गया होता। किन्तु वही न्यायालय दिल्ली में तोड़फाड़ या सीलिग मामले में कानून से ऐसा चिपट गया कि न्याय की भाषा ही भूल गया। न्यायपालिका को यह अच्छी तरह मालूम है कि दिल्ली के अनेक ऐसे घर न्यायिक सक्रियता के प्रभाव से या तो खंडहर बना दिये गये या सील हो गये जो नये मास्टर प्लान के आने के बाद बच सकते थे किन्तु न्यायपालिका ने किसी की एक भी नहीं सुनी। कल्पना करिये कि न्यायालय के प्रारंभिक आदेशों का उसी तरह पालन होता तब मास्टर प्लान के बाद उन सबका क्या होता? खूब हो हल्ला होने के बाद न्यायालय ने स्वयं भी कई संशोधन किये। मुझे महसूस हुआ कि जाहिरा शेख जेसिका लाल जैसे मामलों में न्यायपालिका ने सीधे न्याय देने की एक गलत परंपरा स्थापित की है जो भविष्य में न्याय और कानून के सम्बन्धों के लचीलेपन पर बुरा प्रभाव डाल सकती है और दिल्ली तोड़फोड़ कानून के पालन कराने में भी कुछ उसी तरह की अति सक्रियता घातक हो सकती है।

पिछले दिनों न्यायालय ने एक सर्वसम्मत संवैधानिक निर्णय द्वारा विधायिका के संविधान संशोधन के असीम अधिकार पर रोक लगाई और कहा कि विधायिका संविधान के मूल स्वरूप के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकती। अब तक विधायिका यह मानकर चलती रही कि ऐसे विवादास्पद कानूनों को नवीं अनुसूची में डालकर वह निश्चित हो सकती है किन्तु न्यायालय ने नवीं अनुसूची को न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत मान लिया। यह तो बिल्कुल सामान्य सी बात है कि संविधान सर्वोच्च है और संसद संविधान के अन्तर्गत ही संविधान संशोधन कर सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि संविधान का मूल ढांचा, संसद के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। कल्पना करिये की संसद किसी संविधान संशोधन द्वारा पॉच वर्ष के स्थान पर अपनी अवधि 25 वर्ष करके उसे नवीं अनुसूची में डाल दे तब उसे कौन रोक सकता है? जिस तरह भारत की विधायिका का चरित्र पतन हुआ है उसमें ऐसे उदाहरण असंभव नहीं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि इतनी मामूली से बात को समझने में न्यायालय को इतने वर्ष क्यों लगे? यदि एक सामान्य नागरिक एक मिनट में ही यह सकता है कि संसद को संविधान संशोधन के असीमित अधिकार नहीं हो सकते उस बात को इतने विद्वानों को कहने में इतने वर्ष लग गये। आज भी कई राजनेता दबी जुबान न्यायालय के इस निर्णय से बहुत दुःखी हैं क्योंकि इस निर्णय ने उनकी उच्च श्रंखलता पर अंकुश लगाया है।

न्यायपालिका का यह निर्णय लोकतंत्र के लिये मोल का पत्थर सिद्ध होगा। धीरे धीरे संविधान का मूल ढांचा भी परिभाषित होगा और इसी क्रम में व्यक्ति के मूल अधिकारों पर भी बहत छिड़ेगी। यही निर्णय संविधान निर्माण में समाज की भूमिका स्थापित करने में भी बहुत सहायक होगा क्योंकि अब तक संविधान संशोधन से निर्माण तक को एक मात्र भूमिका राजनेताओं के पास ही सुरक्षित मानी जाती रही किन्तु अब समाज की भूमिका पर चर्चा होगी। न्यायालय के इस एतिहासिक निर्णय ने संभावनाओं के अनेक द्वार खोल दिये है। अब विधायिका भी घायल सांप के समान ताक में रहेगी। यदि न्यायपालिका इस निर्णय को अपनी जीत मानकर अपनी सर्वोच्चता प्रमाणित करने में लग गई तो बाजी उलट भी सकती है। भारतीय जनमानस ने इस निर्णय के बाद महसूस किया कि विधायिका पर उचित अंकुश लगाया जा चुका है। अब न्यायपालिका की बारी है। यदि न्यायपालिका ने सीधे न्याय देने की जल्दी में विधायिका की अनदेखी का क्रम जारी रखा तो न्यायिक सक्रियता के विरूद्ध भी विधायिका का पलटवार हो सकता है और उस स्थिति में विधायिका फिर मजबूत हो सकती है।

न्यायलपालिका को बहुत सतर्क रहना होगा। सीधा न्याय देने की आतुरता की अपेक्षा व्यवस्था को मजबूत करना होगा सबसे खास बात यह है ''न्यायालय सर्वोच्च की प्रतिस्पर्धा का भाव मन से बिल्कुल निकालना होगा तभी भारत में लोकतंत्र सुरक्षित रह सकती है इस देश की जनता आतुरता से प्रतिक्षा कर रही है न्यायपालिका , विधायिका और कार्यपालिका एक दूसरे प्रतिस्पर्धा न होकर एक दूसरे के पूरक बनकर कार्य करें।

किन्तु वर्तमान भारत में इसके साथ एक तात्कालिक प्रश्न भी जुड़ा हुआ की वर्तमान परिस्थितियों में सर्वोच्च की प्रतिस्पर्धा में विजयी होने पर समाज को किससे खतरा अधिक है। यदि इस आधार पर देखें तो न्यायपालिका की अपेक्षा विधायिका सवोच्चता की कई गुना अधिक हागी क्योंकि विधायिका का चरित्र पतन असीमित हो गया है। समाज का कर्तव्य है की वह न्यायपालिका को सम्हल कर चलने की सलाह दें।

पत्रोत्तर

प्रश्नः– स्वदेशी जागरण मंच स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का प्रचार करता है। आपके विचारों से ऐसा लगता है कि आपको स्वदेशी आंदोलन में कोई रूचि नहीं हैं। ऐसा क्यों? आप स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग के विरूद्ध क्यों है?

उत्तरः– यह कहना पूरी तरह गलत है कि मैं स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित करने के विरूद्ध हूॅ। मैं स्वदेशी आंदोलन के भी विरूद्ध नहीं क्योंकि वह आंदोलन जनहित में भी है और राष्ट्रहित में भी। फिर भी मैं उस आंदोलन में स्वयं को सक्रिय नहीं करता क्योंकि शासन मुक्ति का आंदोलन स्वदेशी आंदोलन की अपेक्षा अधिक गंभीर परिणाम मूलक और कठिन है।

राम रावण युद्ध के समय कुछ योद्धा नल नील की भूमिका में थे तो कुछ समुद्र में छोटे बड़े पत्थर डाल रहे थे और कुछ गिलहरी रूप में धूल डाल रहे थे। आवश्यक नहीं कि सबकी समान भूमिका ही हो क्योंकि सक्रियता के लिये क्षमता का आकलन होना भी आवश्यक है। जो लोग अपनी क्षमता अनुसार स्वदेशी आंदोलन में लग हैं वे भी अच्छा ही काम कर रहे हैं भले ही मैं उसमें सक्रिय नहीं। क्योंकि मुझे स्वदेशी की अपेक्षा शासन मुक्ति अधिक परिणाम मूलक दिखता है।

विचारणीय यह है कि टकराव और संघर्ष का सही मुद्दा क्या हो? अभी छत्तीसगढ सरकार ने घोषित किया है कि शक्कर कारखाने से 25 किलोमीटर के भीतर किसान गुड़ नहीं बना सकते। (देखे नवभारत 24/1/2007) अब सरकार तय करेगी कि किसान गुड़ बनावे या न बनावें। हम आम लोगों को गुड़ खाने की ट्रेनिंग देते रहें और सरकार इस संबंध में स्वतंत्रता पूर्वक कानून बनाती रहे। यदि आज गांधी जीवित होते तो सब काम छोड़कर सरकार के ऐसे किसान विरोधी आदेश के विरूद्ध जान की बाजी लगा देते। लेकिन आश्चर्य है कि पूरे भारत में ऐसे आदेश पर कोई चर्चा नहीं हुई क्योंकि किसी को ऐसे टकराव के लिये फुर्सत ही कहा है? फिर यह कोई पहला आदेश तो है नहीं। छत्तीसगढ़ सरकार ने खुले सरसों तेल की बिक्री पर प्रतिबंध लगा रखा है। हम आम लोगों को स्वदेशी समझा रहे हैं। क्या हमने सोचा कि ऐसे ऐसे आदेश ग्रामीण उद्योगों का क्या हाल करेंगे। सरकार की हिम्मत देखिए कि उसने यह भी आदेश दे दिया कि हम कौन सा नमक खायें और कौन सा नहीं। हमने एक दो बठकें करके विरोध की खाना पूर्ति कर ली और फिर लग गये स्वदेशी में। मेंरा ऐसा स्वभाव नहीं। मैने बीस तीस वर्ष पूर्व भी सभी समस्याओं का पहला समाधान लोक स्वराज्य माना था और आज भी वही मान रहा हूॅ। उस समय भी भारत के अनेक

विद्वान कुछ अन्य प्रकार के आंदोलन में व्यस्त थे, वे ही लोग आज कुछ अन्य दूसरे आंदोलनो में व्यस्त हैं और आगे कुछ और आंदोलन उठा लेगें।

प्रश्न उठता है कि मैने गुड तेल और नमक जैस आदेशों के विरूद्ध क्या किया? इस संबंध में आपको स्पष्ट कर दूँ कि मैं इन आदेशों के गुण दोष के आधार पर चुनौती देने का पक्षधर न पहले था न हूँ। गुण दोष के आधार पर चुनौती देने का अर्थ तो यही होता है कि हम शासन के ऐसे अधिकार को स्वीकृति देत हैं जो जनहित में हों। सारी समस्या की जड़ यही है। क्योंकि जनहित का अंतिम निपटारा तो शासन या शासन द्वारा निर्मित प्रक्रिया से होगा जिसके अनुसार गुड़, तेल, नमक के उसके आदेश जनहित में हैं। मैं ऐसे आंदोलन को निरर्थक मानता हूँ जो शासन के अधिकारों को चुनौती देने वाला न हो। इसलिये मैं अपनी गिलहरी की ताकत लगातार शासन मुक्ति के प्रयत्नों में लगा रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि नल नील और हनुमान इस संघर्ष से जुड़ेगे और हम राजनेताओं की गुलामी से मुक्ति पा सकेंगे।

आज कई किसानों की आत्महत्या का रोना रो रहे हैं। मुझे दुःख होता है। मैंने पच्चीस वर्ष पहले ही चेताया था कि यदि ग्रामीण उत्पादनों पर इसी तरह कर लगता रहा तथा यदि आवागमन इसी तरह सस्ता होता रहा, तो देश की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पूरी तरह चौपट हो जायगीं। मैंने स्पष्ट कहा था कि किसान भूख से मरेंगे, श्रमजीवी बंदूक उठावेंगे, बुद्धिजीवी और पूँजीपति गांवो की कीमत पर अट्टहास करेंगे। मेरी पच्चीस वर्ष पूर्व की कही हुई बात आज सच प्रमाणित हो रही है। जब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत नहीं होगी तब तक किसान आत्महत्या नहीं रूकेगी और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था तब तक मजबूत नहीं होगी। जब तक ग्रामीण और कृषि उत्पादन पर टैक्स लगाकर शहरों पर खर्च करने पर रोक नहीं लगेगी तथा जब तक कृत्रिम उर्जा को श्रम प्रतिस्पर्धी घोषित नहीं किया जायगा। आज भारत में ये समस्याएँ इसलिये खड़ी है कि मौलिक समाधानों से मुँह चुराकर लोकप्रिय समाधानों के आंदोलन हुए और आज वही प्रक्रिया दुहराई जा रही है। किसानों को हर हालत में लाभकारी मूल्य प्राप्त करने की स्वतंत्रता होनी ही चाहिये और उसके लिये सबसे ज्यादा घातक बिचौलिये के रूप में सरकार है जो गुड़ बनाने पर भी रोक लगाने का अधिकार रखती है। जब भारत ऐसी चिन्ताजनक हालत से गुजर रहा है तो मैं अब गुमराह होकर अनावश्यक आंदोलन में समय लगाना उचित नहीं समझता। इसलिये मैं स्वदेशी आंदोलन की अपेक्षा शासन मुक्ति आंदोलन को अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि स्वदेशी संविधान, स्वदेशी शासन व्यवस्था ही वास्तविक स्वदेशी आंदोलन है जिसके लिये मेरा अभियान जारी है।

यह मेरी व्यक्तिगत भूमिका है। जो लोग स्वदेशी अभियान में लगे है उसमें में सहयोगी तो नहीं किन्तु समर्थक तो हूँ। ये लोग उन लोगों से तो अच्छे है जो कुछ नहीं कर रहे और उन लोगों से तो हजार गुना अच्छे है जो विदेशी का समर्थन कर रहें है। स्वदेशी का वर्तमान आंदोलन भले ही समस्याओं का पूरा समाधान न हो किन्तु आंशिक समाधान तो है। मेरे विचारों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। यदि आप गुड़ तेल नमक को आधार बनाकर शासन के पंख कतरने का आंदोलन करने की इच्छा शक्ति रखते हैं तो लग जाइये संविधान, स्वदेशी शासन व्यवस्था के साथ। संघर्ष छेड़ दीजिये शासन मुक्ति, ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य के लिये। लेकिन यदि आप शासन के संघर्ष से बचते हुए काम करना चाहते हैं। तो आप जो भी कर रहें है वह करते रहिये । मेरा समर्थन आपको रहेगा। किन्तु मैं तो किसी ऐसे आंदोलन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जो गुड़ तेल

नमक जैसी ग्रामीण वस्तुओं के सम्बन्ध में निर्णय का अधिकार शासन से छिनकर गांवो को दे दें, जो साइकिल को टैक्स फ्री करके रसोई गैस पर जोड़ दे, जो सब प्रकार की ग्रामीण उत्पादन उपभोक्ता वस्तुओं को कर मुक्त करके सारा टैक्स मशीनों से वसूल कर लें। यदि ऐसा नहीं होता तो, चाहे आप विदेशी कम्पनियों से संघर्ष करें चाहे चांद पर कब्जा कर लें, शहरी उद्योगपति मालामाल होते जायेंगे और ग्रामीण अर्थव्यवस्था समाप्त होती रहेगी।

प्रश्नः— साप्ताहिक शिवनाथ में चन्द्रशेखर जी धर्माधिकारी का एक लेख छपा है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार को स्पष्ट हिदायत दी है कि वह संविधान की धारा सैंतालीस के सम्मान में पूरे देश में शराब बन्दी लागू करे। सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश के विरूद्ध एक राष्ट्रीय दैनिक ने टिप्पणी की। सुप्रीम कोर्ट को व्यक्ति के व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप के लिये राज्य पर दबाव नहीं डालना चाहिये क्योंकि धारा सैंतालीस नीति निर्देशक सिद्धांत है, संविधान का भाग नहीं जो बाध्यकारी हो। धर्माधिकारी जी ने उक्त राष्ट्रीय दैनिक के अग्रलेख की आलोचना करते हुए कहा कि उक्त लेख सामाजिक सोच के भी विरूद्ध है और संवैधानिक सोच के भी। संविधान निर्माण के समय भी मूल अधिकार पर चर्चा के समय आत्महत्या को व्यक्तिगत स्वतंत्रता में शामिल करने बात उठी तो नेहरू जी ने डांट कर कहा था कि ''क्या वाहियात बात करते हो''। धर्माधिकारी जी ने कहा है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के पक्ष में शराब की वकालत करने वालों को ऐसी ही भाषा में उत्तर देना होगा। कुछ लोग तर्क देते हैं कि रोकने के बाद भी शराब नहीं रूकती तो क्यों रोकें। इस तर्क का खंडन करते हुए धर्माधिकारी जी ने लिखा है कि क्या चोरी की भी छूट दे देनी चाहिये? धर्माधिकारी जी ने मांग की है कि शराब गांजा चरस आदि सब प्रकार के मादक पदार्थो पर शासन को प्रतिबंध लगाना चाहिये।

आप समय समय पर शराब आदि के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते रहे हैं। धर्माधिकारी जी के विचार और दैनिक के अग्रलेख के सम्बन्ध में आपके विचार क्या हैं। विस्तार से लिखने की कृपा करें।

उत्तरः— सम्पूर्ण विश्व और विशेषकर भारत के महापुरूषों में दो विपरीत गुण एक साथ पाये जाते हैं कि वे उपर वालों से तो अपनी निर्णय की स्वतंत्रता को बनाये रखना चाहते है और नीचे वालों को निर्णय की स्वतंत्रता देने के विरूद्ध रहते हैं। यह दुर्गुण आम तौर पर पाया जाता है और धर्माधिकारी जी भी इससे अछूते नहीं है। किसी ने यदि प्रश्न किया और नेहरू जी डांट दिया। इसलिये हमें शराब समर्थकों को डांट देना चाहिये। मैं इससे सहमत नहीं क्योंकि मैं इस धारणा के ही अतिवादी स्वरूप में गोडसे और गांधी प्रकरण को तौलता हूँ। नेहरू जी ने आत्महत्या का प्रश्न उठाने वाले को इसलिये डांटा था कि वे व्यक्ति, परिवार, गांव और सारे अधिकार समेट कर राज्य के पास रखने का षडयंत्र कर रहे थे। प्रश्नकर्ता का प्रश्न उनकी मंशा में बाधक था और उत्तर नेहरू जी के पास था नहीं।

धर्माधिकारी जी ने शराब के पक्ष में दूसरा तर्क दिया कि वह संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतो में लिखा है। खास बात यह है कि क्या संविधान में लिखी हर बात सही है या उस पर फिर से विचार किया जाय? मेरे विचार में भारतीय संविधान की समीक्षा करके उसकी असंगत बातों में संशोधन आवश्यक है। मुझे सर्वोदय के कुछ विद्धानों ने ही बताया है कि गांधी जी ने पूरे के पूरे संविधान को ही यह कहकर नकार दिया था कि इनमें न कहीं ग्राम स्वराज्य की बात है न लोक स्वराज्य

की। मैं जनवरी माह में एक संविधान संबंधी चर्चा में शामिल हुआ जिसमें आनन्द कुमार जी तथा महेश जी शर्मा भी वक्ता थ। शर्मा जी ने बताया कि प्रस्तावित संविधान की एक प्रति लेकर जब जय प्रकाश जी राजेन्द्र बाबू से मिले और ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य की चर्चा की तो राजेन्द्र बाबू भी चिन्तित हुए। उन्होंने खोज बीन की और आपत्ति को सही पाया। किन्तु समस्या यह आई कि यदि ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य की बात जोड़ी जाती है तो संविधान पर अब की पूरी मेहनत फिर से करनी होगी और इतना समय है नहीं। इसलिये नीति निर्देशक सिद्धान्तों की रचना की गई। नीति निर्देशक सिद्धांतो की रचना ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य की अवधारणा को धोखा देने के लिये की गई थी किन्तु इसी सिद्धांत ने सरकार को समाज और गांवो के गुलाम बनाने के सारे दरवाजे खोल दिये। अब हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे लोग उन्हीं नीति निर्देशक सिद्धांतो का सहारा लेकर संविधान की दुहाई दे रहे हैं। मेरा तो यह मत है कि सबसे पहले यह तय हो की गांव के क्या अधिकार है और राज्य के क्या हैं। उसमें फिर यह तय हो कि शराब बन्दी को गांव की सूची में डालना है कि सरकार की सूची में। यह भी उत्तर आवश्यक है कि शराब को समझा बुझाकर तथा हृदय परिवर्तन से रोकना है या कानून बनाकर।

धर्माधिकारी जी ने चोरी और शराब पीने को एक समान अपराध माना। मैं इससे सहमत नहीं। अपराध और अनैतिक में फर्क होता हैं। किसी अन्य के मूल अधिकारों पर आक्रमण अपराध होता है। इस परिभाषा में अन्य शब्द महत्वपूर्ण है। आत्महत्या अपराध न होकर गैरकानूनी कार्य है। चोरी अपराध है और शराब गैरकानूनी। शराब की तुलना चोरी से नहीं हो सकती।

धर्मधिकारी जी ने अपने कथन की पुष्टि में संविधान, न्यायालय, पण्डित नेहरू आदि के उद्धारण दियें। ये तीनों ही वर्तमान समय में अप्रासंगिक हो चुके हैं। संविधान की राजनीति पर अंकुश लगाने में असफल हुआ और न्यायालय भी। नेहरू जी ने तो ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य की जगह पर सुराज्य का नारा देकर सारी समस्याएँ ही पैदा की है। अब हमें इन सबके कथन पर ऑख मूँद कर विश्वास न करके गुण दोष की कसौटी पर कसकर विश्वास करना है। जो लोग स्वयं या तो निष्क्रिय हैं या प्रभावहीन हैं वही लोग हर काम शासन से कराने की इच्छा रखते है। अन्यथा यदि हमारे चरित्र में दम है तथा हम सक्रिय भी हैं तो शासन के बिना भी ऐसी बुराइयॉ रोकी जा सकती हैं। चरित्र के बल पर डकैती रोकने का दम भरने वाले धर्माधिकारी जी इस तरह शराब बंदी के लिये शासन से गुहार करेंगे यह बात समझ के बाहर है। इसलिये मेरा आप सबसे निवेदन है कि आप सबसे पहले यह तय करिये कि हम सुराज्य चाहते हैं या स्वराज्य? नारा ग्राम स्वराज्य का और सब काम का निवेदन शासन से। इस अस्पष्ट मानसिकता ने अब तक बहुत नुकसान किया है। अब हम कुछ कहन के पूर्व स्पष्ट हों तो अच्छा होगा।

(1) सुश्री कृष्ण कुमारी जी, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

प्रश्नः– आपके विचार दो तीन बार सुने भी और पढ़े भी। आपके विचार बहुत सुलझे हुए, विनम्र तथा महत्वपूर्ण होते हैं। किन्तु ज्ञानतत्व के एक पुराने अंग 92 में ''गांधी गांधीवाद और गांधीवादी'' शीर्षक लेख में आपने जिस तरह गांधी जी के विचारों और सिद्धांन्तों को परिस्थितिजन्य बताया उससे मुझे दुःख हुआ। जो लोग आपसे भिन्न विचार रखते है उनके प्रति प्रयुक्त आपकी भाषा उपयुक्त नहीं थी। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूॅ कि गांधी जी के सिद्धान्तों पर चलकर ही हम आगे बढ़ सकेंगे। आप लोग जिस तरह

आगे बढ़ रहे है या मैं कहूँ कि चींटी की चाल से सरक रहे है उससे तो सफलता में पीढ़ियॉ खप जायेंगी। गति की आवश्यकता हैं। अब आपने वानप्रस्थ लेकर सारा दायित्व संचालक मंडल को सौंप दिया है। संभव है कि अब सक्रियता बढ़े।

उत्तरः— आपका समर्थन और मार्गदर्शन मिलता रहा है। ज्ञान तत्व अंक 92 में मैंने जो लेख लिखा था वह पुनः पाठकों को उसी रूप में भेज रहा हूॅ आप सब लिखे कि मैंने कहाँ और किस रूप गलती की है।

मेरे विचार से मैं पूर्ण नहीं हूॅ। गल्तियाँ स्वाभाविक हैं जो इसी तरह क्रम में सुधरेगी। मेरा मानना है कि गांधी जी ने भी कभी अपने को पूर्ण नहीं माना था। हम लोग गांधी जी को पूर्ण घोषित करके कहीं न कहीं गांधी विचार की अवहेलना ही करते हैं। भारत की वर्तमान समस्याओं का समाधान गांधी जी के बताये मार्ग से ही संभव है इससे मेरी पूर्ण सहमति है किन्तु गांधी जी मृत्यु के एक दिन बाद जो कुछ कहने वाले थे और उनका वह कथन पूरी तरह साफ नहीं हो पाया उसे भी ध्यान में रखकर अपनी नीतियॉ तय करना किसी भी रूप में गांधी विचारों के विरूद्ध नहों है गांधी विचारों का अन्धानुकरण एक भिन्न विषय है जिससे मैं सहमत नहीं। मैंने गहन चिन्तन मनन के बाद ही निष्कर्ष निकाला है कि भारत की सभी समस्याओं का समाधान गांधी विचारों से ही संभव है। किन्तु इस निष्कर्ष के बाद भी गांधी विचारों पर खुले विचार मंथन के पक्ष में हूॅ जिसे अन्य लोग गांधी विरोध कहने लगते हैं।

मेरी इच्छा है कि आप उक्त लेख के उन अंशो को और स्पष्ट करें जिससे आपको कष्ट हुआ। आपके पत्र के बाद हो सकता है कि मैं अपनी भूल सुधार लूँ।

(2) मोहम्मद शफी आजाद, खिझना, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश।

प्रश्नः— ज्ञान तत्व 121 से पता चला कि ब्रहमचारी राजसिंह जी आर्य के प्रेरणा तथा स्वामी जगदीश्वरानन्द के सानिध्य से आपने वानप्रस्थ की दीक्षा ली है। ब्रहमचारी जी और स्वामी जी का मैं बहुत बहुत शुक्रगुजार हूँ कि उन्होंने आपको आगे बढ़ाने में गति मिलने का मार्ग प्रशस्त किया। एक शायर की कुछ पंक्तियाँ हैः—

इस तरह मुहब्बत की शुरूआत कीजिये।
एक बार अकेले में मुलाकात कीजिये।
हिलने न पायें होठ, मगर कह जायें बहुत कुछ।
आंखो में आंखे डाल के हर बात कीजिये।

आपका पता छत्तीसगढ़ का है और फोन नम्बर दिल्ली का। स्पष्ट कीजिये कि आप कहाँ है?

उत्तरः— आपकी भावनाएँ राजसिंह जी तथा जगदीश्वरानन्द जी तक पहुँचा दी जायेगी। आपका शेर बहुत महत्वपूर्ण है। यदि व्यक्ति स्वयं से बात करने की आदत डाल ले और उसके होठ हिले बिना ही उसका संदेश समाज तक पहुँचने की प्रक्रिया शुरू हो जाय तो बहत ही अच्छा हो। मेरा पता छत्तीसगढ़ का है। किन्तु वर्तमान में दिल्ली कार्यालय में काम कर रहा हूँ। मेरा दिल्ली का कार्यालय तो वही है पर निवास बदल गया है। अब नया पता यह है—

बी—56, जैन मंदिर गली, शंकरपुर, दिल्ली— 110092

मोबाइल नं— 09968374100

यदि आप पत्र व्यवहार करें या मनीआर्डर भेंजे तो यह पता ठीक है। यदि आप चेक या ड्राफ्ट भेजे तो बजरंगलाल, बनारस चौक, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़– 497001 के पते पर भेजें क्योंकि दिल्ली में बैंक एकाउन्ट नहीं है। कभी दिल्ली आना हो तो कार्यालय अवश्य आइये।

(3) श्री पंचम भाई हस्तेड़िया, जयपुर, राजस्थान।

प्रश्नः– आपका पत्र मिला। ज्ञान तत्व म भी पढ़ा। आप बनवारी लाल जी शर्मा और ब्रहमदेव जी शर्मा, ब्रम्हा, विष्णु ,महेश के रूप में निरंतर सक्रिय हैं। किन्तु आपकी सोंच कोका कोला के विषय में साफ नहीं होने से चिंता होती है । जब हम सब लोग कोका कोला को प्रतीक मानकर पूरी बहुराष्ट्र कम्पनियों के विरूद्ध संघर्षरत हैं तब आपकी अलग आवाज क्यों? जब ये कम्पनियाँ भारत की अर्थ व्यवस्था का विध्वंस ही कर देंगी तब किसका व्यवस्था परिवर्तन होगा? क्या आप मानते हैं कि व्यवस्था बदलने तक इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को इसी तरह काम करने दिया जावे?

उत्तरः– प्रत्येक व्यक्ति जो काम करता है वह उसी काम को सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझता है। मैं और ब्रहमदेव शर्मा जी ग्राम स्वराज्य, लोक स्वराज्य को भारत की सभी समस्याओं का समाधान का महत्वपूर्ण आधार मानते है और बनवारीलाल जी विदेशी कम्पनियों से मुक्ति का। मैं भारत में स्वदेशी शासन व्यवस्था को सर्वाधिक महत्व देता हूँ और वे स्वदेशी उद्योग धन्धों को। न मैं उनके कार्य को गलत समझता हूँ न वे मेरे काम को। प्रश्न सिर्फ यही है किस काम पर पहले मिल जुल कर शक्ति लगाई जावे? विचारणीय प्रश्न यह है कि भारत में जो ग्यारह समस्याओं का विस्तार हुआ है उसका कारण भारत की गलत शासन व्यवस्था अधिक है या विदेशी कम्पनियाँ। मुझे तो भारत की गलत शासन व्यवस्था ही कारण समझ में आया है। इसलिये मैं इस दिशा में सक्रिय हूँ। आप सब लोग एक बार बैठ जाइये। बनवारी लाल जी ओर ब्रहमदेव जी भी बैठ जावें। सब मिलकर हम तीनों का पक्ष सुन लें और आप सब मिलकर निर्णय करें कि संघर्ष का क्या मुद्दा हो? पिछले साठ वर्ष तो आप लागों ने ऐसे मुद्दों को आगे कर करके लोक स्वराज्य के मुद्दे को पिछे ढकेल दिया। अब भी जब ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य का मुद्दा आगे लाने का प्रयत्न होता है तो कोई भी अन्य मुद्दा इस मुद्दे को धकियाने के लिये सामने आ जाता है। मैं अब भी मानता हूँ संघर्ष के लिये गांधी विनोबा जयप्रकाश का ग्राम स्वराज्य लोक स्वराज्य का मुद्दा ही सर्वाधिक उपयुक्त है और सबको इसी पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित करनी चाहिये। फिर भी मैं आश्वस्त करता हूँ कि यदि बैठकर कर कोई अन्य मुद्दा भी संघर्ष के लिये तय हो तो मैं आप सबके साथ हूँ। जिस तरह साठ वर्षो तक गुलामी झेली है उसी तरह आगे भी भाग्य म राज्य की गुलामी ही लिखी होगी तो म क्या कर सकता हूँ।

(4) श्री विजय सिंह बलवान, जटपुरा, बुलन्दशहर, यू.पी.

प्रश्नः– ज्ञान तत्व 123 मिला। आपने अपने लेख में संघ को आइना दिखाने का काम किया हैं। मैं भी मानता हूँ कि संघ के राजनीति में जाकर भूल की है। पहले तो संघ समाज के लिये राजनीति में था किन्तु अब वह राजनीति के लिये समाजिक कार्य करता रहता है।

आपने इस लेख में ग्यारह समस्याओं की चर्चा की है। आप यह भी बताइये कि ये ग्यारह समस्याएँ कैसे सुलझेगी। आप इन समस्याओं का सत्ता के माध्यम से समाधान करेंगे अथवा शासन मुक्त समाज व्यवस्था के माध्यम से। मुझे तो लगता है कि बिना सत्ता के कोई सफलता संभव नहीं है।

उत्तरः– स्वतंत्रता के बाद सत्ता ओर राजनीति के बीच कुछ ऐसा घालमेल हुआ कि दोनों के बीच का अंतर ही समाप्त हो गया। सत्ता को ही राजनीति कहा जाने लगा और राजनीति को ही सत्ता। गांधी जी राजनीति में पूरा–पूरा दखल रखते थे। किन्तु सत्ता से दूर दूर तक सम्बन्ध नहीं था। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी ने भी राजनीति पर नियंत्रण का भरपूर प्रयास जारी रखा था किन्तु सत्ता में शामिल होने की कभी कल्पना नहीं की थी। बहुत प्राचीन समय में तो यह नियम ही था कि विद्धान (ब्राह्मण) राजनीति को नियंत्रित करेगा किन्तु राजकार्य में शामिल नहीं होगा। स्वतंत्रता के बाद राजनीति और सत्ता का भेद मिट गया । विनोबा जी ने राजनीति और सत्ता को एक समझने की भूल की और आर्य समाज ने भी वही भूल की। परिणाम स्वरूप राजनीति और सत्ता का भेद पूरी तरह मिट गया।

अब सबसे सार्थक प्रयास यह होना चाहिये कि दोनों का फर्क बने। संघ स्वतंत्रता के बाद सत्ता संघर्ष में शामिल होकर भूल कर बैठा। सत्ता की चाशनी एक बार मुँह लगी तो फिर छटती नहीं। हमेशा ऐसा महसूस होता है कि अब सत्ता थोड़ी ही दूर है। संघ को कभी न कभी तो सत्ता और राजनीति के सम्बन्धों पर दो टूक निर्णय लेना ही होगा।

ग्यारह समस्याओं का समधान सत्ता से ही होगा किन्तु इनके समाधान का तरीका राजनीति खोजेगी, सत्ता नहीं। हमें सत्ता संघर्ष में कूदने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि समाधान राजनीति खोजेगी और सत्ता उसे कार्यान्वित करेगी। हम लोगों का पूरा का पूरा प्रयास राजनैतिक ही है। तभी तो हम राजनीति शस्त्र की चर्चा कर रहे हैं। यदि राजनीति नहीं होती तो हम भी और अनेक संस्थाओं की तरह समाज सेवा में लग गये होते। संविधान संशोधन का पूरा विषय राजनैतिक ही है। मुझे आशा है कि आप हमारे प्रयत्न को ठीक तरह से समझेंगे और हमें उचित सलाह देंगे।

(5) श्री ओम प्रकाश शर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

प्रश्नः– ज्ञान तत्व पढ़ता हूँ। आपके विचारों से कहीं कहीं सहमति नहीं बन पाती है। मेरा मानना है कि–

व्यक्ति चरित्रवान तभी बन सकता है जब उसे परिवार चलाने हेतु प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त हो। आज की स्थिति यह है कि–

(1) भ्रष्टाचार तीव्र गति से बढ़ रहा है।

(2) नेतागण चुनाव के समय जनता के बीच हाथ जोड़े खेड़े रहते हैं उसके बाद पांच वर्ष तक उनके दर्शन दुर्लभ हैं।

(3) रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या जटिल होती जा रही है। इनके अभाव में व्यवसाय छिन्न–भिन्न हो रहे हैं। लोग गांवों से शहर और शहर से विदेशों की ओर पलायन कर रहे है।

(4) पहले बाहुबली राजनीति में पकड़ बनाते थे। अब तो वे स्वयं ही राजनीति करने लगे हैं। बाहुबल, बुद्धिबल को पछाड़ रहा है।

(5) बुद्धिजीवियों का पलायन रोकने की बात तो होती है पर आधार नहीं बताया जाता कि पलायन वी.पी सिंह का मंडल रोक सकता है या मोइली समिति की आधी अधूरी रिपोर्ट।

ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि चरित्र निर्माण कौन करेगा? आपके द्वारा संगठित मुट्ठी भर लोग जो स्वयं संगठित नहीं हैं? आपके संगठन में ही कई ऐसे लोग है जो जाति विशेष से ज्यादा लगाव रखते हैं। यक्ष प्रश्न यह है कि चरित्र निर्माण होगा कैसे और करेगा कौन?

इसलिये मेरा आपसे निवेदन है हि ह्दय परिवर्तन के प्रयास करिये। तब शायद कुछ चरित्र निर्माण संभव हो।

उत्तरः— आपने भारत की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन पांच सूत्रों में किया वह पूरी तरह ठीक है। आपके यक्ष प्रश्न से भी मेरी सहमति है कि चरित्र निर्माण कोन करेगा। किन्तु आपने चरित्र पतन का जो समाधान बताया वह पूरी तरह गलत है। आपका यह तर्क बिल्कुल समझ में नहीं आया कि व्यक्ति चरित्रवान तभी बन सकता है जब उसके पास प्रचुर मात्रा में परिवार चलाने के लिए धन उपलब्ध हो। यदि ऐसा होता तो धनी लोग चरित्रवान होते और गरीब चरित्रहीन। स्वतंत्रता के बाद भारत के सामान्य लोगों की आर्थिक स्थिति सुधरी ही है, बिगड़ी नहीं। फिर चरित्र में सुधार की अपेक्षा बिगाड़ क्यों हुआ? सच्चाई यह है कि चरित्र पर चार पांच प्रतिशत ही मजबूरी का प्रभाव होता है। बाकी तो चरित्र व्यक्ति की प्रवृत्ति है। चरित्र निर्माण में न राज्य की कोई भूमिका होती है न कानून की। कानून तो सिर्फ दुष्चरित्रों को अपराध करने से रोक सकता है, चरित्र निर्माण नहीं कर सकता। यदि राज्य और कानून चरित्र निर्माण का जितना ही प्रयत्न करेंगे उतना ही चरित्र पतन के अवसर पैदा होंगे। वर्तमान समय में चरित्र पतन का एकमात्र कारण चरित्र निर्माण के प्रयत्नों में राज्य का अधिकाधिक सक्रिय होते जाना है। यदि राज्य ने चरित्र निर्माण के प्रयत्नों से स्वयं को दूर रखा तो इतना चरित्र पतन होता ही नहीं।

मेरे विषय में आपकी जो धारण है वह भी भ्रमपूर्ण है। मेरा न काई संगठन है न ही मैं किसी भी रूप में चरित्र निर्माण का काम रहा हूँ। चरित्र निर्माण के प्रयत्नों में अभी मेरी कोई सक्रियता नहीं है क्योंकि चरित्र निर्माण के प्रयत्नों में तो आर.एस.एस, गायत्री परिवार, सर्वोदय, बाबा रामदेव, आशा राम बाबू, मुरारी बापू आदि अनेक बड़ो बड़ी हस्तियाँ काम कर रहीं है। ऐसी हस्तियों के बाद भी लगातार चरित्र गिर ही रहा है। मैं कोई हस्ती तो हूँ नहीं।किन्तु इन हस्तियों की असफलता के बीज भी इन सबके प्रयत्नों में ही छिपे हुये हैं ऐसा मुझे महसूस होता है। ये लोग एक तरफ तो चरित्र निर्माण की बात करते रहते है और दूसरी ओर चरित्र निर्माण के लिये शासन पर भी कानून बनाने का दबाव बनाते रहते है। कानून से चरित्र निर्माण नहीं होता यह सब जानते है तो ये सर्वोदयी भी लगातार शराब बन्दी के कानून की मांग करते रहते है और संघ वाले भी। संघ के लोग तो तम्बाकू रोकने या गुटका रोकने तक का कानून बनाने का आंदोलन करते रहते है। गांधी जी की बात में इतना दम था कि कानून की अपेक्षा उनकी बात का प्रभाव अधिक था। रामदेव जी की बात में भी वजन रहा कि बहुत लोगों ने उनकी बात के प्रभाव में अपना जीवन सुधार लिया। संघ और सर्वोदय के लोगों ने बिल्कुल उल्टा काम किया। मुसलमानों के साम्प्रदायिक सोंच का समाधान कानूनी परिवर्तनों में है लेकिन ये लोग डन्डे के जोर से करने का असफल प्रयत्न कर रहें है। इसी तरह डकैती और हत्या का समाधान भी कानूनी प्रयत्नों में है किन्तु गांधीवादी हृदय परिवर्तन की बात कर रहें हैं। सबसे आश्चर्य तो यह है कि यह दोनों शराब और तम्बाकू जैसे पर कानूनी रोक की मांग भी साथ साथ ही करते रहते हैं। मेरे विचार में चरित्र सुधार के ऐसे ना समझ प्रयत्नों के कारण ही सरकार Over Loaded हुई और सुरक्षा न्याय जैसे शासन के प्रयत्न पिछड़े। इन लोगों ने सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में सारा दायित्व शासन पर डाल दिया। मेरा प्रयत्न यह है कि चरित्र निर्माण के इन दायित्वों से शासन को हटाने की राह बनाऊँ जिससे समाज में चरित्र पतन रूके और चरित्र निर्माण का कुछ प्रभाव दिखे।

मेरा आपसे निवेदन है कि एक तो आप यह भ्रम निकालें कि चरित्र पर गरीबी का बहुत प्रभाव पड़ता है और दूसरा भ्रम यह निकालें कि मैं कोई संगठन बनाकर चरित्र निर्माण की बात सोंच रहा हूँ। आप यदि मेरे प्रयत्नों में कोई सहायता

कर सकते हैं तो यही हो सकता है कि आप समाज के कार्यो से शासन को दूर करने में लग जावें जिससे समाज का चरित्र पतन रूक सके।

(6) श्री दीनानाथ वर्णवाल, दिल्ली।

प्रश्नः– ज्ञान तत्व के अंक 127 में गोर्बाचोव और बूद्धदेव भट्टाचार्य की तुलना की। आपके लेख से मेरे दिमाग में निम्न प्रश्न उभरे–

(1) आपने लिखा कि गोर्बाचोव का प्रयास सम्पूर्ण विश्व के मानवीय इतिहास में स्वर्णाच्छरों में अंकित होगा। यह कैसे?

(2) साम्यवादियों ने कांग्रेस की बन्दूक श्रमजीवियों के कन्धे पर रखकर ऐसा उपयोग किया की अटल बिहारी जी की मजबूत किलेबन्दी भी ध्वस्त हो गई। इस लेख में ऐसा आपने किस आधार पर लिखा?

(3) आपने यह भी लिखा की वामपंथी अर्थनीति देश और समाज को समृद्ध बनाने में सहयोगी नही है। आप इस बात को स्पष्ट करें।

(4) आपने लिखा कि सेज योजना से आर्थिक स्थिति में तेज छलांग लगेगी। हमारे विचार में तो सच्चाई इसके विपरीत है। आप और स्पष्ट करें।

(5) आप ज्ञान तत्व के विभिन्न अंको में ग्रामीण और शहरी व्यवस्था पर चिन्तन करते रहे हैं। यह एक यथार्थ है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर घट रहें है जिसके परिणाम स्वरूप गांवो के लोग शहरो की ओर पलायन कर रहे हैं। इस पलायन से शहरों की आबादी बढ़ रही है जहाँ ये ग्रामीण झुग्गी झोपड़ियों में नारकीय जीवन जीने को मजबूर है। इनकी बाढ़ रोकने के लिये शहरी प्रशासन इन्हें शहरों से भी बल पूर्वक खदेड़ रहा है। ऐसी स्थिति में श्रमजीवी गरीब क्या करे और कहाँ जायें?

(6) 2007 के बजट पर विद्धानों की राय भिन्न भिन्न है। आप किससे सहमत हैं।

उत्तरः–मार्क्स ने जो विचार दिया वह एक नई व्यवस्था का प्रारूप था जो तानाशाही से प्रारंभ होकर लोक स्वराज्य तक जाता था। इसे ही मार्क्स ने सत्ता विहीन व्यवस्था कहा था। किन्तु मार्क्स के नाम पर जो वाद आया उसन सत्ता परिवर्तन को ही व्यवस्था परिवर्तन मान लिया और मानवीय समस्याओं के समाधान के को दर किनार करके पूँजीवाद से संघर्ष को ही एक सूत्रीय कार्यक्र बना लिया। इन लोगों ने सारे मानवीय मापदण्डों को किनारे करके लाखों लोगों की हत्याएँ तक कर दीं, साम्राज्यवाद विरोध के नाम पर कई देशों पर सैनिक आक्रमण करके कब्जा कर लिया और रूस को एक ऐसा अभेद्य किला बना दिया कि वहॉ के आम नागरिक भी पूरे विश्व के सम्पर्क से कट गये। गोर्बाचोव ने मार्क्स के मौलिक उद्देश्यों के विपरीत चल रही तानाशही सोच से दुनिया को मुक्ति दिलाई। उस समय विश्व दो सैनिक समूहों के बीच विभाजित था जो विभाजन गोर्बाचोव ने समाप्त किया। इस विभाजन के समाप्त होने से कुछ वर्षो तक अमेरिका का एकछत्र शासन रहा किन्तु धीरे धीरे अमेरिका की जनता में ही विभाजन हो रहा है। अब लगातार अमेरिका की आक्रमणकारी नीतियों का विरोध हो रहा है और बुश के नेतृत्व की अमेरिकी सरकार आज उस समय से ज्यादा कमजोर दिख रही है जैसी गोर्बाचोव के पूर्व थी। मेरा मानना था कि गोर्बाचोव ने दुनिया के सैनिक विभाजन से अपना पैर खींचकर अपना नाम मानवीय इतिहास में अमर किया है।

2. भारत के राजनैतिक गणित में वामपंथी सर्वाधिक अनुशासित और योजनाबद्ध काम करने वाले माने जाते हैं। हर चुनाव में ये मुद्दा बनता हैं और अन्य दल उन्हीं मुद्दों के पक्ष विपक्ष में संगठित होते रहते हैं। साहित्य जगत पर इनकी गहरी पकड़ है। 2003 के आम चुनावों में अब सरकार के फीलगुड का उत्तर किसी के पास नहीं था। वामपंथियों ने ही कांग्रेस को गरीब मजदूर ग्रामीण के नाम पर आक्रामक किया। अटल सरकार आक्रमण नहीं झेल सकी और परास्त हुई। अटल सरकार के बाद जो सरकार बनी उसने भी गरीब मजदूर ग्रामीण को भूलकर अटल सरकार की ही नीतियाँ कायम रखीं। कांग्रेस और भाजपा की आर्थिक नीतियॉ बिल्कुल एक हैं और वामपंथियों की भिन्न। किन्तु वामपंथ अकेला अटल जी का मुकाबला करने में सक्षम नहीं था इसलिये उसने कांग्रेस का उपयोग किया।

3. वामपंथी अर्थनीति भारत में उपलब्ध संसाधनों के न्यायपूण वितरण पर अधिक जोर देती है, उत्पादन पर कम। देश उन्नति करता है उत्पादन वृद्धि पर और समाज मजबूत होता है न्यायपूर्ण वितरण पर। दोनों को एक साथ बढ़ना चाहिये। किन्तु भारत की वर्तमान अर्थव्यवस्था को न्यायपूर्ण वितरण की कोई चिन्ता नहीं है और वामपंथ को उत्पादन वृद्धि की कोई चिन्ता नहीं। वामपंथ की यह खास विशेषता है कि जहॉ वह सत्ता में होता है वहाँ तो वह उत्पादन की चिंता करता है किन्तु जहॉ वह विपक्ष में होता है वहॉ उत्पादन वृद्धि में बाधा उत्पन्न करता है। साम्यवाद विपक्ष की ऐसी भूमिका अपनाता है कि अर्थव्यवस्था बिल्कुल मजबूत न हों। वर्तमान समय में यही हो रहा है। न्यायपूर्ण के वितरण के नाम पर वामपंथ मनमोहन सरकार की आर्थिक नीति में निरंतर रोड़े अटकाता है जो आर्थिक विकास में बाधक हैं। श्री मनमोहन सिंह जी की अर्थनीति आर्थिक दृष्टि से भारत को लगातार मजबूत कर रही है भले ही वह आर्थिक विषमता भी बढ़ा रही हो और श्रम शोषण भी बढ़ा रही हो।

आदर्श स्थिति तो यह होती कि वामपंथ अधिक उत्पादन और न्यायपूर्ण वितरण का समन्वय करता किन्तु ऐसा समन्वय उनकी राजनैतिक महत्वाकांक्षा में साधक न होकर बाधक हो सकता है। इसलिये किसी समन्वय में उसकी कोई रूचि नहीं है।

शेष उत्तर अगले अंक में!

लोक संविधान सभा समिति (प्रस्तावित)
दिल्ली प्रदेश

श्री बाबू लाल शर्मा
डॉ0 वाचस्पति उपाध्याय
श्री वी.पी. सिंघल
श्री वेद प्रताप वैदिक
पंडित मौजीराम शर्मा
श्री युद्धवीर सिंह

गांधी शांति प्रतिष्ठता
कटवरिया सराय
अम्बेडकर मार्ग
प्रेस एन्क्लेव
सफदजंग एन्क.
इस्ट आफ कैलाश

श्री रमेश राघव	दयालपुर
ब्र. राज सिंह आर्य	सब्जी मंडी
डॉ0 राम अवतार शर्मा	लोनी रोड
स्वामी सर्वानंद सरस्वती	सुखदेव बिहार
श्री सत्यपाल जी	लाजपत नगर
श्री सतपाल मलिक	सोम विहार
श्री सत्य प्रकाश गौतम	नई सड़क
श्री शिव खेड़ा	बंसत विहार
श्री सुभाष कश्यप	सैनिक फार्म
डॉ0 आनंद कुमार, (प्रोफेसर)	J.N.U
डॉ0 राजकुमार जैन, (प्रोफेसर)	D.U
डॉ0 अजीत झा, (प्रोफेसर)	D.U
श्री ललित मोहन गौतम, एडवोकेट	S.C
श्री के.के. गुप्ता	
श्री टी.के. ओमन (प्रोफेसर)	J.N.U
डॉ0 अनिल मिश्रा	
प्रो0 यशवन्त कुमार रंजन	D.U
श्रीमती रंजना भदौरिया	
प्रो0 सुधीर गोयल	D.U
श्री जेड.के.फैजान,एडवोकेट	S.C
श्री श्याम सुन्दर शर्मा, एडवोकेट	S.C
डॉ0 अमित मिश्रा, सेक्रेटरी जनरल	फिक्की
श्रीमती रानी जैठमलानी, एडवोकेट	S.C
श्री मुकेश गोयल	बसंत कुंज
चौ0 शमशेर सिंह	बसंत विहार
श्री बी.एस.मान, एडवोकेट	बसंत कुंज
श्री युद्धवीर सिंह	महिपालपुर
श्री ईशरत अली अंसारी,एडवोकेट	
श्रीमती उषा महाजन, लेखिका	बसंत कुंज

पंजाब

श्री राकेश गर्ग	संगरूर

बिहार

आचार्य धर्मेन्द्र	आरा
बी.बी.कुमार	कटिहार
श्री द्वारिको सुन्दरानी	गया
श्री जगत नरायण सिंह	गोपालगंज
श्री महेश भाई	गोपालगंज
श्री सव नरायण दास	दरभंगा
डॉ0 ईश्वर दयाल	नालंदा
श्री योगेन्द्र प्रसाद सिन्हा	पटना
श्री प्रभाव कुमार पूर्णिया	
श्री वैद्यनाथ चौधरी	बेगुसराय
श्री कैलाश साहू	मधुबनी

मध्यप्रदेश

श्री श्याम बहादुर नम्र	अनूपपुर
श्री कृष्ण मंगल सिंह कुल श्रेष्ठ	उज्जैन
श्रो सुरेश चनद्र दुबे	इंदौर
डॉ गुरूशरण	ग्वालियर
श्री दिनेश दत्त चतुर्वेदी	जबलपुर
श्री विनय सागर मुनि जी	छिन्दवाड़ा
श्री लक्ष्मी नारायण नायक	टीकमगढ़
श्री कन्हैयालाल डूंगरवाल	नीमच
श्री जयन्त वर्मा	भोपाल
श्री मदन मोहन व्यास	रतलाम
श्री कमलश त्रिपाठी	सतना
श्री सुरेश दिवान	होंशंगाबाद
डॉ0 गौतम कोठारी	इंदौर
विदुश्री सुमन लता	इंदौर

महाराष्ट्र

श्री अन्ना हजारे जी	अहमद नगर
श्री मधु सूदन अग्रवाल	गोंदिया
श्री माधव खुशहाल राणे	जलगॉव
श्री पूर्ण चन्द्र बडाला	पुणे
श्री ठाकुर दास बंग जी	वर्धा
श्री शिव शंकर पेटे	वर्धा
श्री असगर अली	बम्बई
श्रीमती सुरेखा दलवी	बम्बई
श्री ब्रह्म मुनि	बीड
श्री सुहास सरोदे	यवतमाल
श्री श्याम सुन्दर तिवाड़ी	शोलापुर
श्री सदा विजय आय	शोलापुर

राजस्थान

श्री धर्मवीर आर्य	अजमेर
श्री एम.एस.सिंगला	अजमेर
श्री मोहन राज भंडारी	अजमेर
श्री रामस्वरूप जी	अजमेर
श्री अमर सिंह आर्य	अलवर
श्री श्याम सुन्दर व्यास	उदयपुर
श्री महेन्द्र नेह	कोटा
श्री अब्दुल जब्बार	चित्तोडगढ़
श्री अमर सिंह आर्य	जयपुर
श्री सुधेन्दु पटेल	जयपुर
श्री पंचम भाई हस्तेड़िया	जयपुर
श्री रिषभ जागरूक	जयपुर
श्री सत्यव्रत सामवेदी	जयपुर
श्री अमर कुष्ण व्यास	जोधपुर
श्री हीरालाल श्रीमाली	राजसमंद

श्री भागीरथी चौधरी	सोकर

हरियाणा

श्री महावीर त्यागी	पानीपत
श्री शिव कुमार खंडेलवाल	सोनीपत

हिमांचल प्रदेश

श्री गिरिधर योगेश्वर	कांगड़ा